श्रीगङ्गायै नमः ।

गंगालहरी

मूल, छाया छन्द

और भाषाटीकासहित.

समृद्धंसौभाग्यंसकलवसुधायाःकिमपित-

न्महैश्वर्य्यंलीलाजनितजगतःखण्डपरशोः

श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथमूर्तं सुमनसां,

सुधासौन्दर्य्यंतेसलिलमशिवंनःशमयतु॥

छायाछंद ।

बड़ी नीकी शोभा भुवन मनलोभा सुख करे ।
महासम्पत्सारी क्षण जगत्कारी शिव धरे ॥
श्रुती तत्वस्फूर्त्ती सुरसुकृतमूर्त्ती मन हरै ।
सुधासे सो नीकी सलिल लख जीका मलटरै ॥ १ ॥

भावार्थ–हे गङ्गाजी ! संपूर्ण पृथिवी को, जिसका वर्णन न होसके ऐसी परम शोभा देनेवाला, सहज में ही चौदह भुवनों को उत्पन्न करनेवाले महादेवजी का परम ऐश्वर्य, सम्पूर्ण वेदों का सार, इन्द्रादि देवताओं का मूर्त्तिमान् पुण्य और अमृतकी समान मधुर तथा अमरपना देनेवाला अति प्रसिद्ध तुम्हारा जल हमारे पापोंका नाश करे ॥ १ ॥

दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां,
द्रुतं दूरीकुर्वन्सकृदपि गतोदृष्टिसरणिम् ॥
अपिद्रागाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह,
प्रवाहस्ते वारांश्रियमयमपारां दिशतुः २

छायाछन्द ।

अलक्ष्मी दीनोंकी हरत मतहीनों कि कुमती ।
परै एकै दृष्टी करत सुखवृष्टी द्रुतगती ॥
अविद्यारूपी जो नरुदलनही को गुरु महा,
हमें सम्पत्कारी अमित हित वारी बह रहा ॥ २ ॥

भावार्थ-हे गङ्गाजी ! जो इस लोक में दृष्टि से एकवार भी देखने पर निर्धनों की दीनता को और दुष्टचित्त पुरुषों के पाप को भी तत्काल दूर करके, सम्पूर्ण अविद्यारूप वृक्षके काटने का उपदेश करनेवाला गुरु होता है, ऐसा यह तुम्हारे जलोंका प्रवाह हमें अपार सम्पत्ति देवे ॥ २ ॥

उदञ्चन्मार्तण्डस्फुटकपटहेरम्बजननी-
कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोभनिवहाः॥
भवन्तु त्वंगन्तोहरशिरसि गङ्गातनुभुव-
स्तरंगाःप्रोत्तुंगादुरितभयभंगायभवताम्

छायाछंद ।

उमाके नैनाकी रवि छाव भ्रवांकी चढ़ रहीं ।
तरंगें गंगाकी क्षुभित शिव अंगा बढ़ रहीं ॥
उठें ऊँची नीची सुरसरित वीची शिवजटा ।
तुम्हैं हो भै भंगा हर लहर गंगा छावे छटा॥ ३॥

भावार्थ-उदय होते हुए सूर्यकी समान लाल लाल होने से हेरम्बभयरूप कपटको दिखानेवाले जो पार्वतीजी के नेत्रों के कटाक्ष तिनके संभ्रम से जिनको बड़ाभारी भय उत्पन्न हुआ है ऐसे महादेवजी के मस्तक पर लहराने वाली. गंगाजी की अति ऊँची तरंगें सबों के पाप और भयोंका नाश करने वाली होवें ॥ ३ ॥

तवालम्बादम्ब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा,
मयासर्वेऽवज्ञासरणिमथ नीताःसुरगणाः॥
इदानीमौदास्यंभजासियदिभागीरथितदा
निराधारोहारोदिमि कथयकेषामिहपुरः४

आर्य छन्द ।

तुम्हारा हेअम्बा हमहिं अवलम्बा नित रहै ।
अवज्ञा तो सारे सुरगण कि म्हारे चित रहै ॥
उदासीनी कीनी यदि न सुध लीनी अब तुही ।
कहो आगे काके रुदन करूँ जाके? अब तुही ॥४॥

भावार्थ—हे मात। गंगाजी ! तुम्हारे आश्रय से बड़े गर्व में होकर मैंने कुछ भी विचार न करके सम्पूर्ण देवताओं का तिरस्कार करा है, और हे भागीरथि ! अब मेरा उद्धार करने के समय यदि तू उदासीन पना धारण करती है तो निराधार हुआ मैं, इस लोक में किसके सामने दुःखित हो कर रोदन करूँ ? सो तूही बता ॥ ४ ॥

स्मृतिंयाता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
हरत्यन्तस्तन्द्रांतिमिरमिवचन्द्रांशुसरणिः
इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला,
ममान्तःसन्तापंत्रिविधमथपापञ्चहरताम्५

छायाछन्द ।

स्मृती ज्योंहीं होती अघहरनि ज्योती कि नरको।
हरै मन्तस्तन्द्रां हरत जिमि चन्दा तिमिरको ॥
वही तेरी मूर्त्ती सुरभजनपूर्त्ती जलमयी ।
त्रितापोंको टारे करि चित्त हमारे हितत्रयी ५॥

भावार्थ-हे गंगाजी ! जो तुम्हारी प्रवाहरूप मूर्त्ति, पापी पुरुषों के भी स्मरण करनेपर, तत्काल जिस प्रकार चन्द्रमाकी किरणोंका प्रकाश अन्धकार नाश करता है, तिसी प्रकार अज्ञानरूप अन्धकारका नाश करती है। वह ही सम्पूर्ण देवताओंने जिसके जलको भक्तिपूर्वक सेवन करा है ऐसी तुम्हारी मूर्त्ति मेरे अन्तःकरणके आध्यात्मिक,आधिभौतिक और आधिदैविकरूप तीन प्रकारके तापोंका और कायिक. वाचिक, मानसिक इन तीन प्रकार के पापोंका भी नाश करे. ॥ ५ ॥

अपिप्राज्यंराज्यंतृणमिवपरित्यज्यसहसा,
विलोलद्वानीरंतवजननितीरंश्रितवताम् ॥
सुधातःस्वादीयःसलिलभरमातृप्तिपिवतां
जनानामानन्दःपरिहसतिनिर्वाणपदवीम्६

छायाछन्द ।

महाराजे राजे तृणसम सुप्रासाद तजतैं ।
तुम्हारे ही तीरे तरुतर बसैं ईश भजते ॥

सुधासे भी स्वादू पियहिं जल साधू सुखमहा ।
सुमुक्ती पै ओहो कुमुद जनको सो हँसरहा ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मातः ! सम्पूर्ण पृथिवीके भी राज्य को तृणकी समान त्यागकर, जहां वायु से बेंत के वृक्ष हलरहे हैं ऐसे घनी छायायुक्त, तेरे तटका आश्रय करनेवाले और अमृत से भी अधिक स्वादयुक्त जलको यथेच्छ पीनेवाले पुरुषोंका आनन्द मोक्षमार्ग की भी हँसी करता है ॥ ६ ॥

प्रभातेस्नातीनां नृपतिरमणीनांकुचतटी
गतोयावन्मातर्मिलतितवतोयैर्मृगमदः ॥
मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैःपरिवृता,
विशन्तिस्वच्छन्दंविमलवपुषानन्दनवनम्

छायाछन्द ।

सवेरे जो न्हातीं नृपतिय सुहातीं सलिलमें ।
कुचों की कस्तूरी जिन मृगनकी पूरि जलमें ॥
तभी वेही सारे सुरवन सिधारे सुर बने ।
सुरोंके सो संगी शुभगति अभंगी सुख घने ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मातः ! प्रातःकाल के समय स्नान करने वाली राजस्त्रियों के स्तनों के अग्रभाग पर लगी हुई कस्तूरी जिस समय तुम्हारे जलोंसे मोजती है उससमय ही वह कस्तूरी जिनसे उत्पन्नहुई है वह मृग, सैकड़ों हजारों देवताओं से

सेवन करेहुए दिव्य शरीरको धारण करके अपनी इच्छा के अनुसार क्रीड़ा करनेके लिये इन्द्रके नन्दनवनमें प्रवेश करतेहैं ७

स्मृतंसद्यःस्वान्तंविरचयतिशान्तंसकृदपि
प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापञ्च हरति।
इदं तद्‌गंगेति श्रवणरमणीयं खलु पदं
ममप्राणप्रान्तवंदनकमलान्तर्विलसतु ८

आर्याछन्द ।

स्मृतीका आना जो मम हृदि सुशान्ती करणको।
गुणोंका गाना सो तुरत भवभ्रान्ती हरणको ॥
यही गंगा गंगा श्रवण-रसरङ्गा मृदुध्वनी ।
प्रलै प्राणोंकी पै मुख कमलही है रह बनी॥८॥

भावार्थ—हे भागीरथि ! जो (गङ्गानाम) एक बार भी स्मरण करने पर चित्त को तत्काल राग द्वेषादिरहित करके शान्त करदेता है, और गान करनेपर तत्काल ही पाप और संसारबन्धनके तापोंका नाश करता है, वह यह निःसंदेह कानों को सुखदेने वाला 'गङ्गा' ऐसा पद अन्तकाल में मेरे मुख रूप कमल के विषै शोभाको प्राप्त होय ॥ ८ ॥

यदन्तः खेलन्तोबहुलतरसन्तोषभरिता,
नकाकानाकाधीश्वरनगरसाकाङ्क्षमनसः।
निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं,

तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः॥९॥

छायाछन्द ।

किनारे पै थारे खग अति सुखारे लसत हैं ।
सुस्वर्गी भोगोंकी मनहिं नहिं आसा वसत हैं ॥
निवासी लोगोंके जनन हननादी दुख दरै ।
तुम्हारा सो प्यारा तट झट हमारा श्रम हरै॥९॥

भावार्थ-हे गंगाजी ! जिस तुम्हारे तीर पे क्रीड़ा करने वाले काक (कौए) पक्षी परम आनंद में निमग्न होकर, स्वर्ग के सुख की भी इच्छा नहीं करते हैं, और जो तुम्हारा किनारा वास करने वाले प्राणियों के जन्म मरण और पुत्रादि के मरण से प्राप्त होने वाले शोकको दूर करता है ऐसा अतिप्रसिद्ध यह तुम्हारा तीर हमारे श्रम को दूर करने में समर्थ होय ॥९॥

न यत्साक्षाद्वेदैरपि गलितभेदैरवसितं,
नयस्मिन्जीवानांप्रसरतिमनोवागवसरः
निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनितत्त्वंनविषयः १०

छायाछन्द ।

अभेदी वेदौ भी नहिं कहि सकें भेद अतिही ।
मनुष्योंकी वानी मति अति थकानी न गतिही॥
स्वविद्यासे नाशी अगम तम राशी प्रकट जो ।

विशुद्धांगे गंगे प्रविशय तुम्हीं तत्व सत हो॥१०॥

भावार्थ-हे गंगाजी! जिस ब्रह्म को भेदरहित वेदों ने भी नहीं जाना, जहाँ जीवों की वाणी और मनका व्यापार नहीं चलता है, ऐसा आकाररहित, निरन्तर रहनेवाला, स्वप्रकाश मायातीत जोब्रह्म सो तू है,विषय कहिये नाशवान् पदार्थनहींहै१०

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधिवितानैरपि च य-
न्नलभ्यंघोराभिः सुविमलतपोराशिभिरपि
अचिन्त्यंताद्विष्णोःपदमखिलसाधारणतया
ददानाकेनासित्वमिहतुलनीयाकथयनः११

छायाछंद।

सुध्यानों ज्ञानोंसे बहु विधि विधानादि करके।
तपस्या दानोंसे श्रुति व्रत वितानादि धरके॥
मिले ना जो विष्णुपद सपदि दे तू स्वजनको।
तुम्हारी दायाका अतुलयश भायासवनको॥११॥

भावार्थ--हे भागीरथि! बड़े२ दानों से, ध्यानों से, अनेक प्रकारके यज्ञों से और अत्यन्त कष्टसे सिद्ध होनेवाले तपोंकी राशियों करके भी जो नहीं प्राप्त होता है ऐसा अचिन्त्य विष्णु-पद (वैकुण्ठ) अथवा मोक्ष सबको समान दृष्टिसे देती हुई तू किसके साथ तुलना करने योग्य है यह हमें बता? ॥११॥

नृणामीक्षामात्रादपिपरिहरन्त्याभवभयं,

शिवायास्ते मूर्तेः कइहमहिमानंनिगदतु ॥
अमर्षम्लानायाः परममनुरोधं गिरिभुवो-
विहायश्रीकंठःशिरसिनियतंधारयतियाम्

छायाछन्द ।

निहारे से सारे भवभय उबारे नरनि को ।
सुकल्याणी मूर्ती महिमाहिमपूर्त्ती वरनि को ?
भवानी की वानी कर हर उपेक्षा शिर धरी ।
शिवा शोभाशाली भजहु बनमाली सुरसरी १२

भावार्थ--हे गंगाजी ! श्रीमहादेवजी सापत्न्यभावसे उत्पन्न हुए क्रोध के कारण अतिखिन्न हुई पार्वतीजी के अति आग्रह को न मानकर परम प्रसन्नता से जिन तुमको निरन्तर मस्तक पर धारण करते हैं, तिस दर्शनमात्रसेही मनुष्यों के संसार बंधनरूप भय को दूर करने वाली, कल्याणकारक तुम्हारी मूर्त्ति की महिमा को इस संसार में कौन वर्णन करसकता है? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं ॥ १२ ॥

विनिंद्यान्युन्मत्तैरपिचपरिहार्य्याणिपतितै-
रवाच्यानिव्रात्यैःसपुलकमपास्यानिपिशुनैः
हरन्तीलोकानामनवरतमेनांसि कियतां,
कदाप्यश्रान्तात्वंजगतिपुनरेकाविजयसे ।

छायाछन्द।

करैं निन्दा वैरी पतित इक ठौरे तजि भजैं।
न ब्रात्यादी बोलें पिशुन सुन डोलें सँग तजें॥
तुम्हीं ऐसों ही के अघगण सभी के गहत हो।
सदा हो अश्रान्ता जगति गति शान्ता वहत हो १३

भावार्थ-हे गंगाजी! अविचारी पुरुषभी जिनकी निन्दा करें जिनका प्रायश्चित्त है ही नहीं ऐसे पतित पुरुष भी जिन का त्याग करें और गर्भाधान आदि संस्काररहित ब्रात्य तथा दुर्जन पुरुषभी रोमांचयुक्त होकर जिनका नामभी न लें, ऐसे जनका दुष्टोंके पापोंका निरन्तर नाश करने वाली और तिस पर भी कभी श्रमको प्राप्त न होनेवाली, ऐसी एक तुम्हीं इस जगत् में विजयको प्राप्त होती हो॥ १३॥

स्खलन्ती स्वर्लोकादवनितलशोकापहतये,
जटाजूटग्रन्थौयदसिविनिबद्धापुरभिदा॥
अयेनिर्लोभानामपिमनसिलोभंजनयतां,
गुणानामेवायंतवजननिदोषःपरिणतः १४

छायाछंद।

सुधारा स्वर्लोकी बहि महि अशोकी करनकौं।
पुरारीने बांधी जटन मधि साधी जटन सौं॥
अहो जो निर्लोभी सुगुण उनको भी बस किया
तुम्हारी कीर्तीने विवश यशही ने श्रम किया १४

भावार्थ-हे माता! भूमण्डलका शोक दूर करने के लिये स्वर्गलोकसे नीचे उतरनेवाली तू महादेवजी करके अपने जटा जूटके विषैं बाँधीगई है, इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि निर्लोभी पुरुषों के भी मन में लोभ उत्पन्न करनेवाले तेरे गुणों का ही यह दोष बन्धनरूपसे परिणाम को प्राप्त हुआ है ॥१४॥

जडानंधान्पङ्गून्प्रकृतिवधिरानुक्तिविकलान्
ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितनिस्तारसरणीन्
निलिम्पैर्निर्मुक्तानपिचनिरयान्तर्निपततो
नरानम्बत्रातुंत्वमिहपरमंभेषजमसि॥१५॥

छायाछंद ।

जडोंको अन्धोंको सहज बहिरों गुंग जन को ।
ग्रहोंके जो फांसे तरन पथ नासे नरन को ॥
सुरों के भी त्यागे यमगृह अभागे परन को ।
उन्हें तू ही माता भिषज रुज त्राता तरन को१५

भावार्थ—हे मातः! इसलोकमें आलसी, अन्धे लंगडे, जन्म से बहिरे, गूँगे, ग्रहों की पीडासे भ्रमते हुए, जिनका शास्त्र में कोईभी प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ऐसे महापापी और देवताभी जिनकी रक्षा करने से हाथ उठाचुके हैं ऐसे निरन्तर नरकमें पडे हुये मनुष्योंको तारने के लिये तू परम अमरपना देनेवाली और औषधरूप है ॥ १५ ॥

स्वभावस्वच्छानांसहजशिशिराणामयमपा-
मपारस्ते मातर्जयतिमहिमाकोऽपिजगति॥
मुदायं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः,
समासाद्याद्यापिस्फुटपुलकसान्द्राःसगरजः

छायाछन्द ।

सुहावै श्रीधारा विमलजल प्यारा प्रकृत है।
स्वभावी है शोभा महिमहिम लोभा जगत है॥
सदाही है ध्याते सगरसुत गाते गुण महा।
सुस्वर्गोमें होती पुलकतन ज्योती सुखवहा॥१६॥

भावार्थ—हे मातः! स्वभावसे ही स्वच्छ और शीतल तेरे जलोंका प्रवाह अवर्णनीय अमोघ जगत् में जयको प्राप्त होता है, क्योंकि तेरे जलों के स्पर्श से दिव्य शरीर धारण करनेवाले और जिनके अंगों पर रोमाञ्च खड़े हैं ऐसे सगर राजा के पुत्र स्वर्गलोक को प्राप्त होकर भी इस समय पर्यन्त हर्ष के साथ जिसका गान करते हैं॥ १६॥

कृतक्षुद्रैनस्कानथ झटिति सन्तप्तमनसः,
समुद्धर्तुं सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः।
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरिता-
न्नरान्दूरीकर्त्तुं त्वमिव जननि त्वंविजयसे॥

छायाछन्द ।

जुहैं छोट खोटे दुखित चित होते स्वकरनी ।
तिन्हो हेतू सेनू नग्न हित हैं तीर्थ धरनी,
परन्तू हे मात अति पतित पाते जन जिन्हें ।
न प्रायश्चित्ती भी तुम सम तुम्हीं तारनि तिन्हें १७

भावार्थ—हे मातः ! पलाण्डु (शलगम) भक्षण करना आदि छोटे २ पातकों करके भी तत्कालही पश्चात्ताप (पछ-तावा) करने वाले मनुष्योंको पवित्र करनेवाले त्रिलोकी में बहुत से तीर्थ हैं परन्तु जिनके पापों का प्रायश्चित्त होही नहीं सकता ऐसे मनुष्यों को पवित्र करने वाली तुमसरीखी तूहीहै

निधानंधर्म्माणांकिमपिचनिधानंनवमुदां,
प्रधानंतीर्थानाममलपरिधानंत्रिजगतः॥
समाधानंबुद्धेरथ खलुतिरोधानमाधियां,
श्रियामाधानंनः परिहरतुतापं तववपुः १८

छायाछंद ।

सुकर्मों धर्मोंका निधि विधि विधानादि सुखमा ।
सुतीर्थों का धाता त्रिजग परिधाता प्रमुखसा ।।
कुबुद्धी शुद्धीको अमति मति वृद्धी करने को ।
तुम्हारी श्री काया त्रितय भय माया हरनको १८

भावार्थ—हे मातः ! वेद में कहे हुये धर्मों का स्थान और

नवीन २ चमत्कारिक रूपों का उत्पन्न करने वाला, सम्पूर्ण तीर्थोंका राजा, त्रिलोकीका निर्मल वस्त्ररूप, बुद्धिके दुश्चिन्तानों को दूर करनेवाला दुष्टबुद्धि पुरुषोंको कदापि दृष्टि न पड़ने वाला, और मोक्ष आदि सम्पत्तियोंका देनेवाला तेरा दिव्य शरीर हमारे आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापोंको नष्ट करे ॥ १८ ॥

पुरोधावं धावं द्रविणमदिराघूर्णितदृशां,
महीपानां नाना तरुणतरखेदस्य नियतम्,
ममैवायं मन्तुः स्वहितशतहन्तुर्जडधियो
वियोगस्ते मातर्यदिहकरुणातःक्षणमपि॥

छायाछन्द।

फिरूं भागा भागा वितहित अभागा नृपन पै।
जिन्होंके नैनों मे मद कि मदिराका भ्रमन है॥
वियोगी हूँ माता स्वहितहत पाता दुखअती।
दया दृष्टी कीजे करिकरुण दीजे पदरती॥ १९॥

भावार्थ—हे मातः! इस लोकमें तेरा वियोग (अर्थात् स्नान आदि न करना रूप वियोग) हुआ यह जो अपराध है सो द्रव्यरूप मद्यसे जिनके नेत्र घूमते हैं ऐसे अनेक राजाओं के आगे द्रव्य के लोभसे दौड़ २ के अत्यन्त खेदको प्राप्त होने वाले मुझ मंदबुद्धिका ही दोष है इस कारण क्षणभर तो तू मेरे ऊपर दयाकर॥ १९॥

मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलिताम्भोजपटली
स्खलत्पांसुव्रातच्छुरणविसरत्कौंकुमरुचि ।
सुरस्त्रीवक्षोज-क्षरदगरु-जम्बालजटिलं,
जलं ते जम्बालं मम जननजालं जरयतु ॥

छायाछन्द ।

सुवायू की लीला कमल चल शोभा कनशुची।
हिलोरे हैं देती लहर हरलेती मन रुची ।
सुगन्धी है प्यारी अगर सुरनारी स्तनन सों ॥
सुजम्बारी वारी जनन मृतिहारी जनन कौं२०

भावार्थ—हे मातः! वायुके चलने से हिलती हुई लहरोंसे कम्पायमान होनेवाले कमलों के समूहसे गिरा हुआ जो रजके कणोंका समूह तिसके लेपन से फैली है केशरकी समान कान्ति जिसकी और इन्द्रादि देवताओंकी स्त्रियोंके स्तनों से स्नान के समय गिरेहुए काले अगरकी कीचसे व्याप्त तथा सिवारसे भी युक्त जो तेरा जल है सो मेरे जन्मजालका नाश करे ॥ २० ॥

समुत्पत्तिः पद्मा रमणपदपद्मामलनखा-
न्निवासः कन्दर्पप्रतिभटजटाजूटभवने ।
अथायं व्यासंगो हतपतितनिस्तारणविधौ
न कस्मादुत्कर्षस्तव जननि जागर्त्तु जगतः

छायाछन्द ।

तुम्हारी उत्पत्ती पद पदम पद्मारमन से ।
स्थिती कन्दर्पारी मदन मनहारी जटन पै ॥
धरापै को धारा पतन पतितों के जतन को ।
सहारा सो सारा मथन कवियोंके कथनको २१

भावार्थ-हे माता ! तुम्हारी उत्पत्ति लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् के चरण कमलके निर्मल नखसे हुई है स्थिति महादेवजीके जटाजूटरूप स्थानमें है, और यह तेरा उद्योग (प्रवाहरूपसे बहना) शस्त्रादिसे मारे हुए पापी पुरुषोंके उद्धारके निमित्त है, इसकारण सम्पूर्ण जगत्की अपेक्षा तेरा उत्कर्ष (सर्वश्रेष्ठपना) क्यों न जागृत् (प्रकाशित) और प्रसिद्ध रहे? अर्थात् ऐसा होना ही उचित है ॥ २१ ॥

नगेभ्योयान्तीनांकथयतटिनीनांकतमया
पुराणां संहर्तुः सुरधुनि कपर्दोऽधिरुरुहे॥
कयावा श्रीभर्तुः पदकमलमक्षालिसलिलै-
स्तुलालेशोयस्यांतवजननिदीयेतकविभिः

छायाछन्द ।

नगेंद्रों से धाती कवन सरि भाती अस भली ।

पुराणीने धारी जटन मनहारी सुखवली ॥
न कोई श्रीपीके पदम पद नीके छवि लहैं।
नदी ऐसी कैसी सुर तटिनि जैसी कवि कहैं २२

भावार्थ-हे मातः! कवि जिस एक भी नदीके विषैं तुम्हारी उपमा का थोड़ा सा अंश भी देखें ऐसी नदी कौनसी है? अर्थात् ऐसी कोई नहीं है। हे भागीरथि! पर्वतों पे से उतरने वाली नदियों में से कौनसी नदी श्रीमहादेवजीके जटाजूट पर चढ़ी और कौनसी नदीने लक्ष्मीपति विष्णुभगवान् के चरण कमल को अपने जलों से धोया? सो तूही हमें बता? ॥२२॥

विधत्तांनिःशङ्कंनिरवधिसमाधिंविधिरहो,
सुखंशेषे शेतांहरिरविरतं नृत्यतु हरः ॥
कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः,
सवित्रीकामानां यदिजगतिजागर्तिजननि

छायाछन्द।

समाधी जो साधें विधि हरि अराधें शयन को।
जु श्री शम्भू नाचें सुनृत कृत राचें मयन को ॥
न प्रायश्चित्तादी जप तप व्रतादि न चहिये।
मनोकामा धामा जननि जग जागी जु रहिये २३

भ.पार्थ-हे जगन्मातः ! जगत् के मनोरथों को पूर्ण करने वाली यदि तू जागरही है तो ब्रह्माजी निःसंदेह बेमर्थाद समाधि लगाए रहें विष्णु भगवान् शेष शय्या पर सुखसे शयन करते रहें शिवजी निरंतर ताण्डव नृत्य करते रहें, प्रायश्चित्तों की तो आवश्यकताही नहीं है,तथा कृच्छ्रचान्द्रायण आदि दान तप तथा और देव पूजन आदि की भी परलोक की प्राप्ति के विषय में कुछ आवश्यकता नहीं है, यह कैसे अचरज की वार्त्ता है ॥ २३ ॥

अनाथःस्नेहार्द्रांविगलितगतिःपुण्यगतिदां
पतन्विश्वोद्धर्त्रींगदविगलितः सिद्धभिषजम्
सुधासिन्धुं तृष्णाकुलितहृदयोमातरमयं,
शिशुःसम्प्राप्तस्त्वामहमिहविदध्याःसमुचितम्

छायाछन्द ।

अनाथों पै दाया हतगति सहाया करनि हो ।
गिरों की उद्धर्त्री विपद गद हर्त्री जननि हो ॥
चिकित्सा की कर्त्री अमृतगुणधर्त्री सुख करो ।
शिशू मैं हूं तेरा तृपित चित मेरा दुख हरो २४

भावार्थ-हे गंगे ! अनाथ, गति रहित, पतित, रोगों करके भरा हुआ, और-तृष्णाओं से हृदय में व्याकुल हुआ मैं बालक

स्नेह से दयायुक्त हुई, पवित्रगति देने वाली, जगत् का उद्धार करनेवाली सिद्ध वैद्यरूप और अमृतकी नदीस्वरूप तुझ माता की शरण आया हूँ, सो इस विषय में तू योग्य जो शरणागत की रक्षा करना सो कर ॥ २४ ॥

विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो
गतादूतादूरंक्वचिदपिपरेतान्मृगयितुम् ॥
विमानानांव्रातोविदलयतिवीथींदिविषदां
कथातेकल्याणीयदवधिमहीमण्डलमगात्

छायाछन्द ।

विमानों से सारे मग सुरनवारे घिरगये ।
मृतों के लेने को यमगण फिरैं सो गिरगये ॥
बिलानी भैमानी सब यम कहानी तबहिं से ।
सुगाथा कल्पानी जननि जगजानी जबहिं से॥

भावार्थ—हे माताजी! जबसे तुम्हारी कल्याणकारक कथा भूमण्डलपर आकर प्राप्त हुई है तबसे यमके नगरका, पापियों का बड़ा भारी कलकलाहट का शब्द बिलकुल नष्ट होगया, यमके दूत भी कहीं 'जहां तुम्हारी कथा नहीं है ऐसे' दूर देशों में मृतक प्राणियों को ढूँढने के निमित्त गए, इस समय तो तेरे स्नान पान कथा श्रवण आदिके पुण्य से देवरूप होने वालोंके विमानोंका समूह देवताओं के मार्गों को रोकरहा है२५

स्फुरत्कामक्रोधप्रबलतरसञ्जातजटिल-
ज्वरज्वालाजालज्वलितवपुषां नः प्रतिदिनम्।
हरन्तां सन्तापं कमपि मरुदुल्लासलहरी-
छटाचञ्चत्पाथःकणसरणयो दिव्यसरितः ॥

छायाछन्द ।

बढ़ी ज्वाला माला मनमथ कराला कि मनसों।
विरोधों क्रोधोंकी प्रबल बलती आग तनमें ॥
सुवायू के संगे जल कण तरंगे जु चलतीं ।
हमारे संतापों सकल कलिदापों कु दलतीं २६

भावार्थ-हे गंगे ! तुम देवनदीकी वायुके सम्बन्ध से उत्पन्न हुई जो लहरोंकी परम्परा तिनसे हिलने वाले जलोंके कणोंके समूह, प्रतिदिन देदीप्यमान काम क्रोधसे अत्यन्त प्रदीप्त हुई जो संसार ज्वरकी ज्वालाएँ तिनसे भुनरहे हैं शरीर जिनके ऐसे हमारे आपधियोंसे दूर न होनेवाले संसाररूप संतापका नाश करें ॥ २६ ॥

इदं हि ब्रह्माण्डं सकलभुवनाभोगभवनं,
तरंगैर्यस्यान्तर्लुठतिपरितस्तिन्दुकमिव।
स एष श्रीकण्ठप्रविततजटाजूटजटिलो
जलानां संघातस्तव जननि तापं हरतु नः॥

छायाछन्द ।

सभी भोगों का जो भवन यह ब्रह्मांड भ्रमता ।
प्रवाही धारा के घन बहन ज्यों तिन्दु रमता ॥
सदा श्रीशम्भू की सुजटित जटा में जटिल जो ।
सु संहारै सारी कलि कलिल कागी कुटिलको ॥ ७

भावार्थ—हे मातः ! जिस प्रवाह में चौदहलोकों के सम्पूर्ण सुखोंका स्थानरूप ब्रह्माण्ड, तरङ्गोंसे तन्दुरीके फलकी समान इधर उधर लुढ़कता रहता है ऐसा यह शिवजी के चौंड जटा जूटमें रहनेवाला तेरे जलोंका प्रवाह हमारे तापका नाश करे॥७

त्रपंतेतीर्थानित्वारितमहयस्योद्धृतिविधौ,
करंकर्णंकुर्वत्यपि किल कपालिप्रभृतयः॥
इमं तं मामम्ब त्वामियमनुकंपार्द्रहृदये,
पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि २८॥

छायाछंद ।

करैं हैं कानोंपे कर पुर हनादी सुर प्रिया ।
लजाते तीर्थादी सुनि गुनि सुनिस्तारण क्रिया ।
लजाती देवाली अघहन प्रणाली लखन से ।
लिखूं कथा गीताली लगन वनमाली पगन से ॥

भावार्थ-दया से गीला है चित्त जिसका ऐसी हे माता! इसलोक में जिस मेरे उद्धारके विषय में गोदावरी आदि तीर्थ असमर्थ हैं, और मुण्डमाला धारी महादेवजी आदि देवता भी निःसंदेह अपने कानों पर हाथ रखते हैं, उस मुझको उद्धार करने वाली तू ही तिन सम्पूर्ण तीर्थादिकों के कि हम पाप दूर कर देते हैं, इस अहंकार को दूर करती है ॥ २८ ॥

श्वपाकानांव्रातैरमितविचिकित्साविचलितै-
र्विमुक्तानामेकंकिलसदनमेनः परिषदाम् ॥
अहो मामुद्धर्तुं जननि घटयन्त्याः परिकरं,
तवश्लाघांकर्तुंकथमिवसमर्थोनरपशुः २९

छायाछन्द ।

तजा चांडालों ने जिनहिं नहिं निश्चै जतनका ।
समाजों का तिन्क गृह वृहत हूँ मैं पतन का ॥
मुझे भी निस्तारे परिकर सँवारे अघ हरे ।
पशू सा वे भक्ती तव यश प्रशस्ती कस करे ॥ २९ ॥

भावार्थ-हे मातः ! अभक्ष्य पातक करें या न करें, ऐसे संशय में पड़कर अन्तमें तिस पापाचरण से बचे हुए चाण्डालोंने भी जिसे त्याग दिया है ऐसे पाप समूहोंके अद्वितीय स्थानरूप मुझ पापीका उद्धार करनेको कमर बांधनेवाली तेरी स्तुति करने को मनुष्योंमें पशुकी समान जो मैं सो कैसे समर्थ होसकता हूँ? अर्थात् कभीभी समर्थ नहीं होसकता ॥ २९ ॥

नकोप्येतावन्तंखलुसमयमारभ्यमिलितो
यदुद्धारादाराद्भवति जगतोविस्मयभरः॥
इतीमामीहान्तेमनसिचिरकालंस्थितवती
मयंसंप्राप्तोहं सफलयितुमम्बप्रणयनः ३०

छायाछंद ।

नहीं कोई ऐसा अति पतित जैसा यह मिला ।
कि तारे से जाको नरकपति का हो मन हिला॥
यही तेरी इच्छा बहुदिन प्रतिच्छा रहि बनी ।
गती दीजै लीजै मुझपर परिच्छा सुजननी ३०

भावार्थ—हे मातः! आज पर्य्यंत मुझसा कोई भी पापी मिलाही नहीं, कि जिसका उद्धार करने से जगत् को एका-एकी बड़ाभारी आश्चर्य प्रतीत होता, ऐसी तेरे मनमें बहुत दिनों से रहने वाली इच्छाको सफल करने के अर्थ मैं पापी प्राप्तहुआ हूँ, सो अब तू मुझे उत्तम गतिको पहुँचा ॥ ३० ॥

श्ववृत्तिव्यासंगो नियतमथमिथ्याप्रलपनं,
कुतर्केष्वभ्यासःसततपरपैशुन्यमननम्॥
अपि श्रावं श्रावं ममतु पुनरेवं गुणगणा-
नृतेत्वत्कोनामक्षणमपिनिरीक्षेतवदनम्॥

छायाछंद ।

श्ववृत्ती आवृत्ती नित चित स्ववृत्ती अनृतकी ।
कुतर्कों में वृत्ती छलबल प्रवृत्ती अकृतकी ॥
सदा निन्दावृष्टी मम अगुण सृष्टी अगम है ।
करैं सारे दृष्टी पर तुव सुदृष्टी परम है ॥ ३१ ॥

भावार्थ-हे मातः! श्वान(कुत्ते) की समान जिधर तिधर फिरके निरन्तर निर्वाह करनेका उद्योग निरंतर मिथ्याभाषण कुतर्कोंमें अभ्यास और बारम्बार अन्य पुरुषों के निंदित कर्मों का चिंतवन ऐसा बर्त्ताव करने वाले मेरे दुर्गुणों को अनेकों बार श्रवण करके भी तेरे सिवाय दूसरा कौन क्षणभर भी मेरे मुखकी ओर देखेगा? अर्थात् कोई भी नहीं देखेगा ॥ ३१ ॥

विशालाभ्यामाभ्यांकिमिहनयनाभ्यांखलुफलं
नयाभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः॥
अयंहिन्यक्कारोजननिमनुजस्यश्रवणयो-
र्ययोर्नान्तर्यातस्तवलहरिलीलाकलकलः

छायाछंद ।

जुनेत्रों से देखी कल जल विशेषी न प्रतिमा।
वृथा सोहैं नैना यदि छवि लखैना अप्रतिमा ॥

सुनें कानों से ना कलकल जु वैना लहर के।
सु ऐसों को है ना रस सरस नैनादि धृग्के ३२

भावार्थ—हे मातः! पुरुष के जिन नेत्रों ने तेरी अति सुन्दर मूर्त्ति नहीं देखी उन कर्णोतक चौड़े भी नेत्रों का इस लोक में क्या फल है? तैसे ही जिन कर्णों में तेरी लहरों का कलकल शब्द नहीं पहुँचा उन कर्णों का भी क्या फल है? (अर्थात् कोई फल नहीं है) यह जो इन्द्रियों की निष्फलता रूप धिक्कार है सो मनुष्य को ही है, इन्द्रियों को नहीं है, क्यों कि इन्द्रियें मनुष्य के अधीन हैं॥ ३२॥

विमानैःस्वच्छन्दं सुरपुरमयं ते सुकृतिनः,
पतंतिद्राक्पापाजननिनरकान्तःपरवशाः॥
त्रिभागोयं तस्मिन्नशुभमयमूर्त्तौ जनपदे,
नयत्रत्वंलीलादलितमनुजाशेषकलुषा ३३

छाय छन्द।

विमानों में राजें सुर पुर बिराजें सुकृति जो।
पड़े नर्कों पापी परवशहि पापी कुकृति जो॥
तहां ये दो पांती कुनगरि कुजाती विकृतज्ञो॥
जहाँपैना होती मल दलनि ज्योतीप्रकृतसो ३३

भावार्थ—हे मात ! पुण्यात्मा पुरुष विमानों में बैठकर यथेष्ट स्वर्गलोक को चलेजाते हैं और पापी पुरुष यमदूतों के वशीभूत होकर शीघ्रही नरक में डालेजाते हैं ऐसी व्यवस्था जहां लीलामात्र से ही मनुष्यों के संपूर्ण पापोंका नाश करने वाली तू नहीं है तिस पापरूप देशमें ही होय अर्थात् जिन देशों में तेरी मूर्त्ति का दर्शन आदि प्राप्त है उन देशों के तो सब प्राणी स्वर्ग लोक को ही जाते हैं ॥ ३३ ॥

अपिघ्नंतोविप्रानविरतमुशंतोगुरुसतीः,
पिबन्तोमैरेयं पुनरपिहरन्तश्च कनकम्॥
विहाय त्वय्यन्ते तनुमतनुदानाध्वरजुषा-
मुपर्यब्रक्रीडंत्यखिलसुरसंभावितपदाः३४

छायाछन्द।

जु हैं हत्याकारी कुमति गुरुनारी प्रति करै।
सुरा पीते घोरी कनक धन चोरी प्रति करै॥
सुधाराके वारी तन तज तुम्हारी गति गहै।
पुजें स्वर्गीयों से अधिक यतियोंसे गति लहै ३४

भावार्थ—हेमातः ! निरन्तर ब्रह्महत्या भी करनेवाले गुरुओं की स्त्रियों के विषय चित्तको डुलानेवाले मद्यपान करने वाले और सुवर्ण की चोरी करनेवाले जो महा पापी पुरुष हैं वह भी अन्तसमय तेरे विषय अपने शरीर को त्यागकर संपूर्ण

देवताओंके पूजन करने योग्य चरणवाले होते हुए महादान और यज्ञ करने वाले पुरुषोंके भी ऊपर के लोकों में जाकर क्रीड़ा करते हैं ॥ ३४ ॥

अलभ्यं सौरभ्यं हरति सततं यः सुमनसां,
क्षणादेवप्राणानपिविरहशास्त्रक्षतभृताम् ॥
त्वदीयानांलीलाचलितलहरीणांव्यतिकरात्
पुनीतेसोपिद्रागहहपवमानास्त्रिभुवनम्३५

छायाछंद ।

जुवायू आनन्दी सुमन गन गन्धी धरत है ।
वियोगाग्नी जारे जन मन सुखारे करत है ॥
सुवारी की लीला लहर सुख शीला सुसँग से ।
सदा सो श्री गंगे अघन घन भंगे त्रिजग के३५

भावार्थ–हेमातः ! जो पुष्पों के दूसरों को प्राप्त न होनेवाली सुगंधको निरन्तर हरता है और स्त्री पुत्रादि के वियोग रूप शस्त्र से हृदय में विदीर्ण हुए पुरुषोंके प्राणों को भी हरता है वह भी वायु, तेरी लीला करके हलने वाली लहरों का सम्बन्ध होने से तत्काल त्रिलोकी को पवित्र करदेता है, यह कैसा आश्चर्य है ॥ ३५ ॥

कियंतःसंत्येकं नियतमिहलोकार्थघटकाः,

परेपूतात्मानः कतिच परलोकप्रणयिनः॥
सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं,
जगन्नाथः शश्वत्त्वयि निहितलोकद्वयभरः॥

छायाछंद।

किन्होंने कीन्हे हैं जनहित हि, दीन्हे मन सदा।
मुदा मुक्ती भोगी कितिक बन योगी जन सदा॥
भरोसे में सोवें जुग जग जगन्नाथ सुख से।
कहै कृपा गाथाली अकथ वनमाली स्वमुखसे २६

भावार्थ–हे मातः! कितने ही पुरुष इस जगत् में दूसरे प्राणियोंके कार्य्योंके साधनेवाले अर्थात् परोपकार करनेवाले हैं और दूसरे कितनेही पुरुष तप आदि साधनों से अपने शरीरको पवित्र करके परलोक को जानेवाले हैं परन्तु यह जगन्नाथ पण्डित तो तेरे ऊपर इस लोकका और परलोकका भार रखकर तेरी कृपा से निरन्तर सुख से निद्रा लेताहै ॥२६॥

भवत्या हि व्रात्याधमपतितपाखण्डपरिषत्
परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा।
ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति,
स्वभावोयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः २७

छायाछन्द ।

जु वारि में तेरे खलदल घनेरे परत हैं।
स्वभावों से धारे सहज अघवारे तरत हैं॥
न त्यागे तू आपी प्रकृति प्रति पापी तरनकी।
मुझे पापप्रीती प्रकट रुचि रीती नरन की २७

भावार्थ-हे मातः! संस्कारहीन और नीच जाति के पुरुष जिस के विषें मरण को प्राप्त होकर पड़े हुए हैं ऐसी तुझ को भी तिन पड़ेहुए मुर्दों के शरीर के टुकड़ोंकी रक्षा करने का प्रेम जिसप्रकार कमती करना अशक्य है तिसी प्रकार पाप कर्मों के करने में मेराभी प्रेम है, अर्थात् मैं भी अपने पापकर्म करने के प्रेमको कम नहीं करसकता; क्योंकि इस में कोई संदेह नहीं है कि इस जगत् में कोई भी अपने स्वभाव को नहीं त्यागसकता ॥ २७ ॥

प्रदोषान्तर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धृतजटा,
तटाभोगप्रेङ्खल्लहरिभुजसन्तानविधुतिः॥
बिलक्रोडक्रोडज्जलडमरुटंकारसुभग-
स्तिरोधत्तांतापंत्रिदशतटिनीतांडवविधिः

छायाछन्द ।

जु संध्यामें लीला हर स्वनृतशीलाधृत जटा।

नचावैं ज्यों अगै जट तट उमंगै जललटा॥
भुजा सोहैं फैली स्वर पतन केली जु प्रकटा।
सु डौरू कीसी तान् त्रिदुखहरु श्रीताण्डवछटा॥

भावार्थ-प्रदोष कालमें नृत्यकरते हुए शिवजी करके लीला से मस्तऊपर अस्तव्यस्त नचाई हुई जो जटा. उनके जो चारों ओर गिरना उससे हिलती हुई जो लहरें बढ़ी हुई मानों श्रीगंगाजीकी भुजा तिन को जो फैलाना और कम्पित करना तिस करके युक्त और परस्पर मिली हुई लहरों के मध्यभाव में क्रीड़ा करनेवाले जो जल वही हुआ मानो डमरु तिसके शब्द से सुन्दर, ऐसा जो श्रीगंगाजी का ताण्डवनृत्य, सो भक्तोंका ताप दूर करे॥ ३८॥

सदैवत्वय्येवार्पितकुशलचिंताभरमिमं,
यदित्वंमामम्बत्यजसि समयेस्मिन्सुविषमे
तदा विश्वासोयं त्रिभुवनतलादस्तमयते,
निराधाराचेयंभवतिखलुनिर्व्याजकरुणा॥

छप्पयछन्द।

तुमपी हे अम्बा कुशल अवलम्बा तुमहि पै।
यदो मोकूं टाला याहि कठिनकाला जु सहिपै॥
नसे नीती न्यारी भुवन दशचारी भरहिपै।
दया रीती थारी सफल कल नारी नरहि पै॥३९

भावार्थ--हे मातः ! निरन्तर तेरे ऊपरही अपने कल्याण की चिन्ताका भार अर्पण करने वाले मुझको इस संकट के समय में यदि तू त्याग देगी तो "गङ्गा तारने वाली है" ऐसा जो सब लोगों का विश्वास है सो त्रिलोकी से अस्त होजायगा और यह जो तेरी निष्कपट दया है सो भी निराधार होजायगी ॥ ३९ ॥

कपर्दादुल्लस्य प्रणयमिलदर्द्धांगयुवतेः,
पुरारेः प्रेङ्खन्त्यो मृदुलतरसीमन्तसरणौ ॥
भवान्याः सापत्न्यस्फुरितनयनं कोमलरुचा
करेणाक्षिप्तास्ते जननि विजयन्तां लहरयः ॥

छायाछन्द ।

सशक्ति साद्धंगा शिव शिवद गंगा वह रहीं ।
उमाकी भौं बाँकी सहज सह पत्नी सह रहीं ॥
भवानी भै जोको भुजन जननीको गहरहीं ।
तरंगे उत्तंगा तव भव विभंगा कहरहीं ॥ ४० ॥

भावार्थ-हे मातः ! प्रीति से आलिंगन करके रहने वाली स्त्री जिनके वामभागमें है ऐसे महादेवजी के जटाजूटसे बाहर निकलकर अति कोमल सीमन्त भागमें फिरने वाली और पार्वतीजी करके सापत्नभाव के कारण, क्रोधसे चंचल हुए नेत्रोंसे देखकर अपने सुकुमार हाथों से खैंची हुई तेरी लहरें विजय को प्राप्त हों ॥ ४० ॥

प्रपद्यंते लोकाःकति न भवतीमत्रभवती-
मुपाधिस्तत्रायंस्फुरतियदभीष्टंवितरसि।
शपेतुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मासुरधुनि,
स्वभावादेवत्वय्यमितमनुरागंविधृतवान्

छायाछन्द ।

न केते हैं जाते तट निकट आते रहत हैं ।
तभी तो हैं धाते फल तुमहिं ध्याते लहत हैं ॥
सभी कीर्ती गाते सुख तव कृपाते गहत हैं ।
स्वभावोंते माते मुझहि पद भाते महत हैं ४१

भावार्थ—हे मातः गंगे ! तुझ पूजनीयको कितने पुरुष शरणागत नहीं होते हैं अर्थात् बहुत से पुरुष तेरी शरण आते हैं । इसका कारण यह है कि—तू उन शरणागत पुरुषों को इच्छित पदार्थ देती है, और मेरा जीवात्मा तो स्वभाव से ही तेरे विषै अतुल प्रेम करता है, यह मैं तुमसे शपथपूर्वक कहता हूं, सो तू मेरे मनोरथ को शीघ्र पूर्ण कर ॥ ४१ ॥

ललाटेयालोकैरिहखलुसलीलंतिलकिता
तमोहन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तंडतुलनाम् ।
विलुम्पतीसद्योविधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीयासामृत्स्नाममहरतुकृत्स्नामपिशुचं

छायाछन्द ससलकार ।

जु लीला से भीक्षा भाल तिलकं शीला रज भली

सततकार ।

तमों को तो हन्ती तरुण तरणीत अतुल सी ॥
कुकर्मों का लेखा दलहि विधिरेखा अटलसी ।
तुम्हारी सो मृत्स्ना हरहि मम तृष्णा कुटिलसी ४२

भावार्थ- हे गङ्गे ! जो मृत्तिका इस लोकमें सब पुरुषों करके अपने मस्तक पर त्रिपुण्ड्ररूप में धारण करी हुई होकर पापरूप अन्धकार का नाश करने को मध्याह्नकाल के सूर्यकी समता धारण करती है, और जो मृत्तिका प्राणियों के मस्तकपर ब्रह्मा जी के लिखे हुए दरिद्रता के सूचक अशुभ अक्षरों का तत्काल नाश करने वाली है वह तेरी मृत्तिका मेरे सम्पूर्ण शोकों का नाश करे ॥ ४२ ॥

नरान्मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो
हसंतःसोल्लासंविकचकुसुमव्रातमिषतः ।
पुनानाःसौरभ्यैःसततमलिनो नित्यमलिनान्
सखायो नः संतु त्रिदशतटिनीतीरतरवः ॥

छायाछन्द ।

न न्हाते निर्बुद्धी निज नगर पुरी बास करते ।
खिले पुष्पालीके मिसहि तिनका हास करते ॥
सुगंधी से नाशे भ्रमर भ्रम टारै सुखप्रदा ।
सखा हों लो मेरे सुरतटिनि तेरे तरु सदा ॥४३॥

भावार्थ- जहां भागीरथी नहीं हैं ऐसे देशोंमें आसक्त होकर रहने वाले मूर्ख पुरुषों का अपने फूले हुए पुष्पों के बहाने से आनंदित होकर उपहास करने वाले और जन्म से लेकर

मलिन अर्थात् काल भी भ्रमरोंको अपने पुष्पों की सुगंधि से निरन्तर पवित्र करने वाले भागीरथी के तटके वृक्ष हमारे मित्र होवें ॥ ४३॥

यजन्त्येके देवान्कठिनतरसेवांस्तदपरे,
वितानव्यासक्तायमनियमरक्ताःकतिपये।
अहं तु त्वन्नामस्मरण कृतिकामास्त्रिपथगे,
जगज्जालंजानेजननितृणजालेनसदृशम्

छायाछन्द ।

अनेकों तो सेवा कठिन तर देवार्चन करैं ।
रखैं यज्ञासक्ती यम नियम शक्ती मन धरैं ॥
मुझे तेरी भक्ती अटल अनुरक्ती फलप्रदा ।
जगज्जालों को मैं समुझहुँ तृणोंके दल सदा४४

भावार्थ-हे मातः ! कितनेही पुरुष जिनकी सेवा अति कठिन है ऐसे देवताओं को पूजते हैं, और दूसरे कितनेही पुरुष यज्ञोंके करनेमें लगे हुए हैं तथा कितनेही पुरुष यम नियमादि योगके साधनोंमें लगेहुए हैं, परन्तु हे भागीरथि ! मैं तो तेरे नाम के स्मरणमें ही पूर्ण मनोरथ होकर संपूर्ण जगज्जालको तृणकी समान मानता हूँ ॥ ४४ ॥

अविश्रांतंजन्मावधिसुकृतजन्मार्जनकृतां
सतांश्रेयःकर्तुंकति न कृतिनःसंतिविबुधाः।
निरस्तालंबानामकृतसुकृतानांतुभवतीं,
विनामुष्मिल्लोकेनपरमवलोकेहितकरम् ॥

छायाछन्द ।

बड़े जो धर्मात्मा सुजन मुक्तात्मा भगत हैं।
तिन्हीं के तो हेतू त्रिदश दृढ़मंतु जगत हैं॥
असत्कामी वामी मम सम जुनामी कुमति हैं।
तुम्हीं ऐसों को ही सुपद प्रद जो हीनगति है ४५

भावार्थ- हे मातः! निरन्तर पुण्यकर्म करके ही अपनी आयु को व्यतीत करनेवाले साधु पुरुषों का कल्याण करने में कुशल कौनसे देवता नहीं हैं? अर्थात् सबही हैं, परन्तु पुण्य न करने वाले निराधार पुरुषों का परलोक में हितकारक तो तेरे सिवाय दूसरे किसी को नहीं देखता हूँ॥ ४५ ॥

पयःपीत्वा मातस्तव सपदि यातःसहचरै-
र्विमूढैःसंरंतुंक्वचिदपिनविश्रांतिमगमम्।
इदानीमुत्संगे मृदुपवनसंचारशिशिरे,
चिरादुन्निद्रंमांसदयहृदयेशायया चिरम् ४६

छायाछंद ।

बुरे मित्रों ही में तुरत पय पी मैं रम रहा।
कहीं पै विश्रांती न मिलि भवभ्रांती भ्रम रहा॥
सुलालो गोदी में जननि निज जीमें करि दया।
तुम्हारीही आसा यह सुत निरासा अति भया ४६

भावार्थ-हे मातः! तेरे जलको पीकर तत्कालही, अतिमूर्ख मित्रोंके साथ क्रीड़ा करनेको मैं अनेक स्थानोंके विषै गया, परन्तु

कहींभी विश्राम नहीं पाया इसकारण हे दयालुचित्ते मातः! अब तू मन्द वायुके चलने से शीतल अपनी गोदी में बहुत समय से जिसे निद्रा नहीं आई है ऐसे मुझ को चिरकाल पर्य्यन्त सुला ॥ ४६ ॥

वधानाद्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं,
किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनःपन्नगगणैः।
न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणतया,
जगन्नाथस्यायं सुरधुनिसमुद्धारसमयः॥४७॥

छायाछन्द ।

न मौनादी साधौ सुपरिकर बाँधौ सुकटि पै ।
भुजंगों से धारौ शिशु शशि सुधारौ मुकट पै ॥
सभी है ये तारौ जिमि कवि जगन्नाथजनको ।
रचूँ ये छन्दाली गहत बनमाली चरनको ॥४७॥

भावार्थ-हे गङ्गे! यह जगन्नाथ पण्डित के उद्धार करनेका समय है, इसकारण तू अतिसुंदर अपनी कमरको शीघ्रही दृढ़ता से बांध और मुकुट में सर्पोंके समूहों से बालचन्द्रमा को बांधकर स्थापन कर जिस किसी साधारण मनुष्यकी समान तू मेरा तिरस्कार न कर ॥ ४७ ॥

शरच्चन्द्रश्वेतांशशिकलश्वेतालमुकुटां,
करैःकुम्भांभोजेवरभयनिरासौच दधतीम्।
सुधाधाराकाराभरणवसनां शुभ्रमकर-
स्थितां त्वां येध्यायंत्युदयाति न तेषांपरिभवः

छायाछन्द।

सुमाथे पै राजैं मणि मुकट भ्राजैं शशिकला।
करों मैं पद्मादी भयहर भपादी सुविमला॥
सुधा शोभा लोभा सबसन अलंकार तन के।
जु ध्यावैं जे पावैं कहिं नहिं तिरस्कार तिनके ४८

भावार्थ-हे गंगे! शरत् कालके चन्द्रमाकी समान श्वेतवर्ण चंद्रमा की कला और श्वेत सर्प को मुकुट पर धारण करने वाली चारों भुजाओं में कुम्भ कमल-वर और अभयको धारण करने वाली अमृत की धारा की समान शुभ्रवस्त्र तथा आभूषणों वाली और बड़े भारी श्वेत मत्स्य पर सवार. ऐसे तेरे रूपका जो पुरुष ध्यान करते हैं उनका कहीं भी अनादर नहीं होता है॥ ४८॥

दरास्मितसमुल्लसद्वनकांतिपूरामृतै-
र्भवज्वलनभर्जितानानिशमूर्जयन्तीनरान्।
चिदेकमयचन्द्रिकाचयचमत्कृतितन्वती,
तनोतुममशंतनोःसपदि शंतनोरंगना४९

छायाछन्द

हसन्त मुखदन्त कान्ति मुख शान्ति धारासुधा।
जलैं जगत ज्वाल जो तिनहिं जो अधारा मुदा॥
चिदात्म छबि चन्द्रकी चमक ज्योतिकान्तीसदा।
द्रवै सु मम अंग गंग हि अभंग शान्तीप्रदा।४९.

भावार्थ-किञ्चित् हास्यस शोभायमान मुखकी कान्ति के

समूहरूप अमृत से संसाररूप अग्निसे भस्म हुए निरन्तर जीवित करनेवाली और चैतन्यरूप चांदनी के चमत्कारको फैलाने वाली, शन्तनु राजाकी स्त्री जो भागीरथी सो मेरे शरीरके सुख को शीघ्र बढ़ाव ॥ ४६ ॥

मंत्रैर्मीलितमौषधैर्मुकुलितं त्रस्तंसुराणां गणैः । स्रस्तंसान्द्रसुधारसैर्विदलितं गारुत्मतैर्ग्रावभिः ॥ वीचाक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनी त्वंतापं तिरयाधुनाममभव ज्वालावलीढात्मनः॥५०

छप्पयछन्द ।

हारे मंत्र अशक्ति ओषधि हुई देवादि सारे डरे ।
गारुत्मादि सुरत्न यत्न हतहैं धारासुधाभी करे ॥
कालीसर्प अदर्पकारि पदको प्रक्षालिनी है सदा ।
सो श्रीगंगतरंग मिश्र वनलाली पालिनी जैसदा ॥

भावार्थ— अपनी लहरों से श्रीकृष्ण भगवान् के चरण कमलों को धोनेवाली हे गंग ! तू संसार रूपी सर्पसे डसे हुए मेरे तापको दूरकर जिस तापका दूर करने के विषयमें, गायत्री आदि मंत्रोंने अपने नेत्र मूँदलिये, औषधें अपनी शक्तिको नहीं चलासकीं देवता भयभीत होगए, गाढे अमृतरस पृथ्वी पर गिरपड़े, और गरुड़ है देवता जिनका ऐसे विषको दूर करने वाले मणिरत्नादिनेभी अपने टुकड़े करडाले अर्थात् इन सबने दूर करना चाहा परन्तु किसीकी न चली, सो अब केवल तेरा ही आसरा है ॥ ५० ॥

द्यूतेनागेन्द्रकृत्तिप्रमथगणमणिश्रेणिनंदीं-
दुमुख्यं सर्वस्वंहारयित्वास्वमथपुरभिदि-
द्राक्पणीकर्तुकामे॥साकूतंहैमवत्यामृदुलह-
सितयावीक्षितायास्तवांबव्यालोलोल्लासि
वल्गल्लहरिनटघटी तांडवंनःपुनातु ॥५१॥

छायाछन्द ।

हारेश्रीशम्भुसारेगणमणिशशिनागेन्द्रनागेन्द्रछाला
स्योंहासोशीघ्रतासेस्वतनपतनकोद्यूतलीलाविशाला
दुर्गाकैनैनबाँकेहसितसितकलाकलसे खेलहारी ।
तौगंगाकीतरंगैंउठिसुठिकरहींताण्डवाऽऽनंदकारी

भावार्थ-जब द्यूतमें पार्वतीजी ने महादेवजी से वासुकिसर्प गजचर्म—प्रमथनामक गण रुद्राक्ष आदि की माला नन्दीश्वर और चन्द्रमा आदि सब धन को जीत लिया तब महादेवजीने एकाएकी अपने शरीर का भी दाँवपर लगानेकी इच्छा करी तब मन्द २ मुसुकुराती हुई पार्वतीजीने, 'इस गंगाको दांवपर जीतलूँ' ऐसी इच्छा से तेरी ओर को देखा उस समय तेरी चंचल ऊपर को उछलने वाली और परस्पर मिलने वाली लहरोंका, मस्तकपर चढ़ालकर नृत्य करनेवाले नटकी समान हुआ जो नृत्य वह हमको पवित्र करे ॥ ५१ ॥

विभूषितानंगरिपूत्तमांगा,
सद्यःकृतानेकजनार्तिभंगा ॥

मनोहरोत्तुंगचलत्तरंगा,
गङ्गाममाङ्गान्यमलीकरोतु ॥ ५२ ॥

छायाछन्द ।

अनंग-अंगारि-जटा लटा में ।
लसै नसैं पाप छवी छटा में ॥
उतंग श्रीगंगतरंगमाला ।
हरै सदाही मम अंग ज्वाला ॥५२॥

भाषार्थ-अपनी स्थितिसे महादेवजीके मस्तक को शोभित करने वाली अनेक भक्तजनोंके दुःखों को दूर करनेवाली और जिसकी अति सुन्दर और ऊँची तथा चञ्चल हैं तरंगे ऐसी श्रीगंगा मेरे सम्पूर्ण अंगोंको शुद्ध करै ॥ ५२ ॥

इमांपीयूषलहरींजगन्नाथेन निर्मितम् ॥
यःपठेत्तस्य सर्वत्र जायंते सुखसंपदः॥५३॥

छायाछंद ।

यही पीयूषलहरी जगन्नाथोक्त जो पढ़ै ।
सोइ होई नित सुखी बनमाली सम्पत् बढ़ै५३

भाषार्थ-जगन्नाथ पण्डितकी रची हुई इस गंगालहरी का जो पुरुष पाठ करता है उसको इस लोक और परलोकमें सुख सम्पति प्राप्त होती है ॥ ५३ ॥

इतिश्री पण्डितराजजगन्नाथविरचितगंगालहरी
भाषाटीकासहिता समाप्ता ।

आत्मतत्त्वप्रकाश ।

जिस आत्मतत्व के जान लेने से रोग का बुढ़ापे का यहाँ तक कि मृत्यु का भी भय नहीं रहता उसी तत्व का प्रकाश इस पुस्तक के पन्ने पन्ने पर पड़ रहा है । जिसे देखकर भीतर के नेत्र खुल जाते हैं । स्व० म०प० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए० पी०एच-डी० की पुस्तक का अनुवाद है । देखिये 'सरस्वती' इसके विषय में क्या कहती है ।

'इसे पढ़लिया मानो थोड़े ही में भारतीय आध्यात्मिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर लिया मूल्य ।=)

अथर्ववेदान्तर्गत

गोपालतापनी–उपनिषद् ।

संस्कृत व्याख्या और भाषाटीका सहित ।

जिसकी उत्कण्ठा भक्तजनोंके हृदय में सर्वदा होती रहती है जिसको बड़े २ विद्वान् भी जानने की इच्छा करते हैं, जो मोक्षसाधन में नौकारूप है जिसका मनन करने से मनुष्य जन्ममरण से छूट जाता है आज वही ग्रन्थ छपकर तयार है । महाशय, इसमें श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लौकिक लीलाओं को वेदसे सम्पादन किया है । जिस के देखने से ज्ञानियों के भी सन्देह दूर होजायँगे । कैसा ही विवादी क्यों न हो इस को एक बार देखते ही श्रीकृष्ण में भक्ति करने लगेगा । इसके अतिरिक्त इस में अनुष्ठान भी हैं जिनके करने से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । सहस्रमुद्रा देकर भी जिन बातों को आप नहीं जान सकते थे वह केवल इस उपनिषद् को पढ़ते ही अब जान सकेंगे । सन्तान की कामना करने वालों को एकवार अवश्य इस गोपालतापिनी–उपनिषद् का पाठ करना चाहिए । मूल्य ॥) आना डाकव्यय पृथक् ।

मिलने का पता—
मैनेजर, लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद ।

यज्ञ-प्रसङ्ग

हिन्दी में अपने ढङ्ग की यह पहली पुस्तक है। जिस यज्ञ से हिन्दू जाति की विशेषता थी जो हिन्दू जाति के धर्म का सब से बड़ा अनुष्ठान था और जिसकी महिमा के वर्णन में चारों वेद भरे हुए हैं, उसी यज्ञ का तात्त्विक वर्णन और मार्मिक विवेचन बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय आचार्य रामेन्द्र-सुन्दर महोदय ने अनोखे ढङ्ग से उस पुस्तक में किया है जिसका यह अनुवाद है। देखिये हिन्दी का सुप्रसिद्ध दैनिक-पत्र 'आज' इसके विषय में क्या कहता है—

"इस पुस्तक में यज्ञ विषय की ऐतिहासिक गवेषणा इतनी विद्वत्ता के साथ की गई है कि पढ़कर मन मुग्ध हो जाता है। × × × × × ×

'पशुयाग' का वर्णन बड़ा ही विद्वत्तापूर्ण और उपादेय है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अध्याय बहुमूल्य है। चतुर्थ अध्याय में ईसाइयों के यज्ञ की वेद-पन्थियों के यज्ञ से तुलना की गई है। संसार के धर्मों के क्रम विकाश और तुलना पर इस अध्याय द्वारा भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। अनुवाद की भाषा बड़ी सुन्दर है।

श्रीज्वालादत्तजी को ऐसी पुस्तक लिखने के लिए बधाई है।" मूल्य ।।।) डाकव्यय पृथक्।

पुस्तकें मिलने का पता—

गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण

लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय,

मुरादाबाद।

कैलासचन्द्र ने लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद में छापा।